Gyanvividha, Vol.-2; Issue-3 (July-Sept.) 2025 : PP-427-431

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-2.25
Vol.-2; Issue-3 (July-Sept.) 2025
Page No.- 427-431
DOI-10.71037/gyanvividha.v2i3.51
©2025 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

Monika parihar
PhD Scholar, Department of Hindi,
Saurashtra university rajkot (Gujrat).

Corresponding Author :

Monika parihar
PhD Scholar, Department of Hindi,
Saurashtra university rajkot (Gujrat).

समकालीन हिन्दी कविता में स्मृति, विस्थापन और आत्म-पहचान का द्वंद्व

सारांश : यह शोध-पत्र समकालीन हिन्दी कविता में स्मृति, विस्थापन और आत्म-पहचान के त्रिकोणीय संबंध की पड़ताल करता है। समकालीन कविता को केवल एक काल-सूचक संज्ञा मानना पर्याप्त नहीं; यह उत्तर-स्वाधीन भारत के सामाजिक मोहभंग, जनतांत्रिक बेचैनी, शहरीकरण, पलायन, हाशिये की अस्मिताओं और बदलते नैतिक परिदृश्य की गहन काव्यात्मक अभिव्यक्ति है। इस कविता की एक विशेषता उसका बहुवर्णी स्वरूप है; इसमें "एक केन्द्रीय विषय का न होना" उसकी सीमा नहीं, बल्कि उसके समय-सापेक्ष विस्तार का लक्षण है । इसी विस्तार के भीतर स्मृति केवल अतीत का भावुक स्मरण नहीं रह जाती, बल्कि वह मनुष्य और समुदाय के बचे हुए अर्थों की रक्षा करती है; विस्थापन केवल भौगोलिक उखड़न नहीं, बल्कि घर, देह, भाषा, श्रम और संबंधों से टूटते भरोसे का नाम बन जाता है; और आत्म-पहचान किसी स्थिर 'मैं' की उपलब्धि नहीं, बल्कि संघर्ष, स्मरण और प्रतिरोध से निर्मित होती है। केदारनाथ सिंह, मंगलेश डबराल, अनामिका और निर्मला पुतुल की कविताओं के समीप-पाठ से यह लेख सिद्ध करता है कि समकालीन हिन्दी कविता में स्मृति एक नैतिक अभिलेख, विस्थापन एक अस्तित्वगत संकट, और आत्म-पहचान एक सृजनात्मक प्रतिरोध के रूप में उपस्थित है।

मुख्य शब्द : समकालीन हिन्दी कविता, स्मृति, विस्थापन, आत्म-पहचान, अस्मिता, स्त्री-स्वर, आदिवासी काव्य-चेतना, घर, शहर, स्थानीयता।

परिचय : समकालीन हिन्दी कविता का उद्भव उत्तर-स्वाधीन भारत की उन ऐतिहासिक और मानसिक स्थितियों से जुड़ा है, जहाँ स्वतंत्रता का स्वप्न बहुत जल्दी यथार्थ के कठोर धरातल से टकराता है। राजनीतिक अस्थिरता, विभाजन की पीड़ा, सामाजिक विषमता, नैतिक अवसाद, पलायन, युवा असंतोष और व्यवस्था से मोहभंग ने कविता के स्वर, भाषा और दृष्टि को बदल दिया (देवशंकर नवीन, 2024)। इसीलिए

समकालीन कविता में चीख, प्रतिवाद, करुणा, लोक-स्मृति, विसंगति और आत्मालोचन एक साथ दिखाई देते हैं; यह कविता एक ओर इतिहास की मार झेल रहे मनुष्य के पास खड़ी है, तो दूसरी ओर उसके भीतर टूटती हुई संवेदनाओं को शब्द देती है (विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, 1982)। नामवर सिंह ने जिस चुनौती की ओर संकेत किया था कि नई कविता को अपने समय की नई संभावनाओं का सामना करना होगा। समकालीन कविता उसी चुनौती के भीतर अपनी नई पहचान अर्जित करती है (नामवर सिंह, 2009)। अतः यह अध्ययन समकालीन कविता को समय-विशेष की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि बदलते समाज और आहत मनुष्य के गहरे सांस्कृतिक दस्तावेज के रूप में देखता है।

इस शोध-पत्र का मूल प्रस्ताव यह है कि समकालीन हिन्दी कविता में स्मृति, विस्थापन और आत्म-पहचान अलग-अलग विषय नहीं, बल्कि परस्पर गुँथे हुए अनुभव-क्षेत्र हैं। जब घर छूटता है, तब स्मृति तीखी होती है; जब स्मृति सक्रिय होती है, तब आत्म-पहचान नए सिरे से प्रश्नांकित होती है; और जब आत्म-पहचान संकट में पड़ती है, तब कविता प्रतिरोध का माध्यम बनती है (सिंह,सुधीर प्रताप, 2019)। इसीलिए समकालीन कविता में स्त्री का "जगह" से संघर्ष, आदिवासी समुदाय का "ज़मीन" से रिश्ता, किसान या प्रवासी का "घर" की ओर लौटता मन, और शहर में खड़ी आत्मा की उदासी, ये सब एक ही बुनियादी द्वंद्व के विविध रूप हैं । इस लेख में तुलनात्मक समीप-पाठ की पद्धति अपनाते हुए उन काव्य-संकेतों को पढ़ा गया है जिनमें मनुष्य अपने खोए हुए स्थान, बिखरती स्मृतियों और नए आत्मबोध के बीच झूलता दिखाई देता है (गंगा सहाय मीणा, 2012)। इस प्रकार यह अध्ययन साहित्यिक, सांस्कृतिक और मानवीय, तीनों स्तरों पर समकालीन हिन्दी कविता की नई समझ प्रस्तावित करता है।

साहित्य समीक्षा : समकालीन हिन्दी कविता पर उपलब्ध आलोचना-साहित्य यह स्पष्ट करता है कि यह काव्यधारा किसी एक सूत्र में बाँधी नहीं जा सकती। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने इसे उत्तर-स्वाधीन सामाजिक यथार्थ की व्यापक संरचना में देखा, जहाँ कविता अनुभव, समाज और व्यक्ति के बीच पुल का काम करती है (विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, 1982)। नामवर सिंह की आलोचना-दृष्टि ने आधुनिक कविता में प्रतिमानों के पुनर्विचार का आग्रह किया, जिससे यह समझ विकसित हुई कि नई संवेदना को पुराने सौंदर्य-मानदण्डों से नहीं पढ़ा जा सकता (नामवर सिंह, 2009)। दूसरी ओर अरुण कमल का यह आग्रह कि कवि के पूरे संग्रहों को एक समग्र "जीवन-दृष्टि" की तरह पढ़ा जाए, समकालीन कविता के आंतरिक तर्क और संवेदनात्मक निरंतरता को समझने में महत्त्वपूर्ण है (अरुण कमल, 1999)। इस आलोचनात्मक पृष्ठभूमि से यह निष्कर्ष निकलता है कि समकालीन कविता का अध्ययन केवल विषय-गणना से नहीं, बल्कि उसके संवेदना-तंत्र और अंत:संबंधों को पढ़कर किया जाना चाहिए।

इसी परिप्रेक्ष्य में अकादमिक लेखन ने समकालीन कविता के कुछ विशेष आयामों को रेखांकित किया है। सुधीर प्रताप सिंह ने केदारनाथ सिंह की कविता में लोक, स्थानीयता, प्रकृति और विस्थापन के मानवीय रूपों को महत्त्वपूर्ण बताया है । गंगा सहाय मीणा ने आदिवासी कविता के संदर्भ में निर्मला पुतुल के योगदान को निर्णायक माना है और यह रेखांकित किया है कि आदिवासी अनुभव पहली बार व्यापक हिन्दी काव्य-चेतना में इतने आत्मविश्वास के साथ दर्ज हुआ (गंगा सहाय मीणा, 2012)। इसी तरह समकालीन कविता के स्त्री-स्वर, अस्मितामूलक आग्रह, पलायन और नवउपभोक्तावादी संकट पर भी ध्यान गया है (देवशंकर नवीन, 2024)। फिर भी स्मृति, विस्थापन और आत्म-पहचान को एक समेकित आलोचनात्मक चौखटे में पढ़ने का प्रयास तुलनात्मक रूप से कम दिखाई देता है। यही वह रिक्ति है, जिसे यह शोध-पत्र भरने का प्रयत्न करता है।

चर्चा एवं विश्लेषण : समकालीन हिन्दी कविता में स्मृति की सबसे सुंदर और जटिल उपस्थिति उन कविताओं में मिलती है जहाँ अतीत किसी सजावटी वस्तु की तरह नहीं, बल्कि वर्तमान की आत्मा में धड़कते हुए तत्व की तरह लौटता है। केदारनाथ सिंह की कविता "बनारस" में नगर का दृश्य केवल भौगोलिक नहीं, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक स्मृति का दृश्य है,"यह आधा जल में है / आधा मंत्र में" (केदारनाथ सिंह 22)। यह पंक्ति बताती है कि

स्मृति का अर्थ केवल पुराना होना नहीं, बल्कि अनुपस्थिति और उपस्थिति के बीच जीवित रहना है। सुधीर प्रताप सिंह के शब्दों में केदारनाथ सिंह की कविता स्थानीयता से जुड़ते हुए भी दिक्काल का अतिक्रमण करती है; इसलिए उनकी स्मृति निजी से सामूहिक और स्थानीय से वैश्विक बन जाती है (सिंह,सुधीर प्रताप, 2019)। यहाँ स्मृति किसी खोई हुई चीज़ का शोक नहीं, बल्कि मनुष्य की सांस्कृतिक आत्मा का संचय है; वह हमें यह भी बताती है कि शहर केवल मकानों से नहीं, बल्कि भाषा, लय, रीति और लोक-स्मरण से बनता है (विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, 1982)। इस अर्थ में समकालीन कविता स्मृति को संग्रहालय में बंद नहीं करती; वह उसे वर्तमान से बहस करते हुए जीवित रखती है।

मंगलेश डबराल की कविता में स्मृति लगभग हमेशा विस्थापन के साथ आती है, इसलिए वह अधिक दर्दनाक और अधिक मानवीय बन जाती है। "स्मृति : दो" में "लोग भी कूच कर गए नई शरणगाहों की ओर" और "एक मिटे हुए दृश्य के भीतर" बची हुई लालटेन, स्वर और पैरों की थाप यह स्पष्ट करती है कि स्मृति दृश्य के टूट जाने के बाद भी इन्द्रिय अनुभवों में बनी रहती है (मंगलेश डबराल, 2020)। दूसरी ओर "घर का रास्ता" में कवि का कथन,"मैं भूल नहीं जाना चाहता था / अपने घर का रास्ता",केवल घर की भौतिक दिशा का प्रश्न नहीं, बल्कि आत्मा की नैतिक दिशा का प्रश्न है (मंगलेश डबराल, 2001)। यही कारण है कि मंगलेश की कविता में घर कोई स्थिर वास्तु नहीं, बल्कि लौटने की आंतरिक बेचैनी है। सुधीर प्रताप सिंह समकालीन कविता की बहुविषयी प्रकृति की चर्चा करते हुए बताते हैं कि यह कविता आत्मबोध से विश्वबोध तक जाती है; मंगलेश की कविता इसी प्रक्रिया में निजी उदासी को सामाजिक अभाव में बदल देती है (सिंह,सुधीर प्रताप, 2019)। इसलिए विस्थापन यहाँ सड़क, शहर या पलायन का बाहरी प्रसंग भर नहीं; यह संवेदना की टूटती हुई भूगोलरेखा है।

स्त्री-कविता में यह द्वंद्व और अधिक तीक्ष्ण हो उठता है, क्योंकि यहाँ विस्थापन की प्रक्रिया सामाजिक संरचना, पारिवारिक प्रशिक्षण और भाषिक अनुशासन से संचालित होती है। अनामिका की कविता "बेजगह" की आरंभिक पंक्तियाँ,"अपनी जगह से गिर कर / कहीं के नहीं रहते",स्त्री-अस्तित्व के पूरे सांस्कृतिक संकट को खोल देती हैं (अनामिका, 2012)। कविता आगे बाल्यकाल के आरंभिक पाठों,"राम, पाठशाला जा! / राधा, खाना पका!",को याद करती है; इस स्मृति में स्त्री का विस्थापन बहुत प्रारम्भिक, लगभग शैक्षिक और वैचारिक प्रक्रिया के रूप में सामने आता है (अनामिका, 2012)। देवशंकर नवीन ने समकालीन कविता के स्त्री-स्वर की चर्चा करते हुए ठीक ही कहा है कि स्त्री-जीवन का मौलिक सच अब कविता में घर, रसोई, श्रम, देह और सार्वजनिक जीवन के अनेक स्तरों पर दर्ज है (देवशंकर नवीन, 2024)। इस तरह अनामिका की कविता दिखाती है कि स्त्री की आत्म-पहचान स्मृति के विरुद्ध नहीं, बल्कि स्मृति की आलोचनात्मक पुनर्व्याख्या से बनती है।

निर्मला पुतुल की कविता इस विमर्श को और आगे ले जाती है, क्योंकि उनके यहाँ घर, ज़मीन, भाषा, जातीय स्मृति और अस्मिता एक-दूसरे से अलग नहीं किए जा सकते। "अपने घर की तलाश में" कविता में कवयित्री लिखती हैं,"अपनी ज़मीन, अपना घर / अपने होने का अर्थ!" (निर्मला पुतुल 30)। यह पंक्ति समकालीन हिन्दी कविता में आत्म-पहचान की सबसे मार्मिक और स्पष्ट व्यंजना है, क्योंकि यहाँ 'होना' सीधे-सीधे 'जमीन' और 'घर' से जुड़ा है। गंगा सहाय मीणा का कथन,"विस्थापन और अस्मिता का सवाल उनकी मुख्य समस्याएँ",निर्मला पुतुल की कविताओं को समझने की आधार-रेखा देता है (गंगा सहाय मीणा, 2012)। "आओ, मिलकर बचाएँ" में कवयित्री "थोड़ा-सा विश्वास / थोड़ी-सी उम्मीद" बचाने का आग्रह करती हैं (निर्मला पुतुल 147); यह केवल भावुक आवाहन नहीं, बल्कि विकास, बाज़ार और सांस्कृतिक निगलन के विरुद्ध सामुदायिक प्रतिरोध की कविता है। यहाँ विस्थापन नदी, जंगल और बस्ती के उजड़ने का नाम है; लेकिन स्मृति भय में नहीं बदलती, वह जीवन-रक्षा के सामूहिक संकल्प में बदल जाती है।

इन कवियों को साथ पढ़ने पर स्पष्ट होता है कि समकालीन हिन्दी कविता में आत्म-पहचान किसी एकरेखीय स्व-घोषणा से निर्मित नहीं होती। अरुण कमल का यह विचार कि कवि के संग्रहों को उनकी "आंतरिक संहति" और

समूची "जीवन-दृष्टि" के साथ पढ़ा जाना चाहिए, यहाँ विशेष रूप से उपयोगी है (अरुण कमल, 1999)। यदि हम इस दृष्टि से देखें, तो केदारनाथ सिंह की सांस्कृतिक स्मृति, मंगलेश डबराल की घर-उन्मुख उदासी, अनामिका की स्त्रीगत 'जगह' की खोज और निर्मला पुतुल की ज़मीन-केन्द्रित अस्मिता, ये सब मिलकर समकालीन कविता में आत्म-पहचान की बहुवचन संरचना रचते हैं। सुधीर प्रताप सिंह जिस बहुरंगी और बहुजनपदीय कविता की चर्चा करते हैं, वह इसी कारण किसी एक विषय में सीमित नहीं होती; उसका 'मैं' निजी होकर भी सामुदायिक है, और सामुदायिक होकर भी आत्मिक (सिंह,सुधीर प्रताप, 2019)। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की समकालीन कविता-दृष्टि भी यह संकेत देती है कि आधुनिक मनुष्य का अनुभव-क्षेत्र अब एक साथ सामाजिक, नैतिक और आत्मिक है (विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, 1982)। इसलिए आत्म-पहचान यहाँ कोई निष्कर्ष नहीं; यह निरंतर पुनर्निर्मित होने वाली संवेदनात्मक प्रक्रिया है।

परिणाम : इस अध्ययन से तीन महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष उभरते हैं। पहला, समकालीन हिन्दी कविता में स्मृति निष्क्रिय पुनर्स्मरण नहीं, बल्कि अर्थों की सक्रिय पुनर्प्राप्ति है; यही कारण है कि केदारनाथ सिंह के यहाँ नगर-स्मृति सांस्कृतिक ऊर्जा में बदलती है और मंगलेश डबराल के यहाँ स्मृति उजड़े हुए दृश्य से भी मनुष्य की गरिमा बचाकर रखती है (केदारनाथ सिंह 22) (मंगलेश डबराल, 2020)। दूसरा, विस्थापन का अनुभव बहुस्तरीय है, यह भूगोल, श्रम, समुदाय, देह, भाषा और लिंग-संबंधों तक फैला हुआ है; इसीलिए अनामिका की 'जगह' और निर्मला पुतुल की 'ज़मीन' एक ही गहरे संकट के दो रूप बनकर सामने आती हैं (अनामिका, 2012) (निर्मला पुतुल 30)। तीसरा, आत्म-पहचान का निर्माण समकालीन कविता में प्रतिरोध, स्मरण और वैकल्पिक मानवीयता के सहारे होता है; यह पहचान आत्ममुग्ध नहीं, बल्कि संबंधपरक और उत्तरदायी है (गंगा सहाय मीणा, 2012)। इस प्रकार स्मृति, विस्थापन और आत्म-पहचान का द्वंद्व समकालीन हिन्दी कविता का केवल एक विषय नहीं, बल्कि उसकी संरचनात्मक संवेदना है।

निष्कर्ष : समकालीन हिन्दी कविता का बड़ा अवदान यही है कि उसने टूटते हुए समय में मनुष्य को केवल करुणा का पात्र नहीं रहने दिया; उसे संघर्षशील, स्मृतिसंपन्न और आत्म-जाग्रत अस्तित्व के रूप में पुनर्स्थापित किया। यह कविता जानती है कि आधुनिक जीवन में विस्थापन अनिवार्य अनुभव बन चुका है, पर वह यह भी जानती है कि स्मृति के बिना मनुष्य का नैतिक चेहरा नहीं बचता, और आत्म-पहचान के बिना प्रतिरोध सम्भव नहीं होता । इसीलिए समकालीन कविता में घर एक स्थान से अधिक एक नैतिक भूगोल है; स्मृति एक सांस्कृतिक शरण नहीं, बल्कि पुनर्विचार का औज़ार है; और पहचान कोई प्राप्त वस्तु नहीं, बल्कि अर्जित होती हुई मानवीय स्थिति है (विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, 1982)। नामवर सिंह की आलोचनात्मक चेतना हमें याद दिलाती है कि नई कविता को अपने समय की नई चुनौतियों के सामने नए प्रतिमान गढ़ने होते हैं (नामवर सिंह, 2009); इसी अर्थ में कहा जा सकता है कि समकालीन हिन्दी कविता ने स्मृति, विस्थापन और आत्म-पहचान के द्वंद्व को केवल व्यक्त नहीं किया, बल्कि उसे साहित्यिक और मानवीय ऊर्जा में रूपांतरित भी किया है। यही उसकी स्थायी प्रासंगिकता और उसकी गहरी साहित्यिक शक्ति है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. अनामिका. *खुरदुरी हथेलियाँ.* राजकमल प्रकाशन, 2019।
2. कमल, अरुण. *कविता और समय.* वाणी प्रकाशन, 1999।
3. डबराल, मंगलेश. *घर का रास्ता.* राधाकृष्ण प्रकाशन, 2017।
4. डबराल, मंगलेश. *स्मृति एक दूसरा समय है.* सेतु प्रकाशन, 2020।
5. पुतुल, निर्मला. *नगाड़े की तरह बजते शब्द.* भारतीय ज्ञानपीठ, 2005।
6. पुतुल, निर्मला. *अपने घर की तलाश में.* रमणिका फाउंडेशन, प्रकाशन-वर्ष उपलब्ध नहीं।
7. सिंह, केदारनाथ. *अकाल में सारस.* राजकमल प्रकाशन, 2003।
8. सिंह, केदारनाथ. *यहाँ से देखो.* राजकमल प्रकाशन, 1983।

9. सिंह, केदारनाथ. *प्रतिनिधि कविताएँ*. राजकमल प्रकाशन, 2011।
10. सिंह, नामवर. *कविता के नए प्रतिमान*. राजकमल प्रकाशन, 2009।
11. सिंह, सुधीर प्रताप। *आधुनिक हिन्दी काव्य-2*। श्री नटराज प्रकाशन, 2018।
12. तिवारी, विश्वनाथ प्रसाद. *समकालीन हिन्दी कविता*. राजकमल प्रकाशन, 1982।
13. वाजपेयी, अशोक. *कविता का जनपद*. राजकमल प्रकाशन, 1991।
14. वाजपेयी, अशोक. *फिलहाल*. राजकमल प्रकाशन, 1970।
15. सहाय, रघुवीर. *लोग भूल गए हैं*. राजकमल प्रकाशन, 1982।
16. सहाय, रघुवीर. *आत्महत्या के विरुद्ध*. राजकमल प्रकाशन, 1967।
17. गुप्त, रमणिका, संपादक. *आदिवासी विकास में विस्थापन*. राधाकृष्ण प्रकाशन, 2019।
18. मीणा, गंगा सहाय. *आदिवासी साहित्य विमर्श*. अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2012।
19. मैनेजर पाण्डेय. *साहित्य और इतिहास-दृष्टि*. वाणी प्रकाशन, 2000।
20. चतुर्वेदी, रामस्वरूप. *हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास*. लोकभारती प्रकाशन, 2003 ।
21. नगेन्द्र. *आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ*. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2008।
22. नवीन, देवशंकर। *हिन्दी कविता के सरोकार*। सेतु प्रकाशन, 2024।

•